eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 08, Special Issue 02, May 2025

हिन्दी रचनाकारों की प्रासंगिकता

डॉ0 दुर्गेश कुमार राय[1]
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी) के.जी.के.कालिज मुरादाबाद, उ0प्र0

Received: 05 April 2025, Accepted: 20 April 2025, Published online: 01 May 2025

Abstract

पूर्ववर्ती रचनाकारों (विशेषकर मध्यकालीन) की, विचार और कला के स्तर पर, पहचान के लिए, आठवाँ दशक एक महत्वपूर्ण कालखण्ड कहा जा सकता है। इसी दशक में हिन्दी के तीन स्तम्भ रचनाकारों– तुलसी, सूर और प्रेमचन्द की शताब्दियां मनाई गई, उनकी कृतियाँ और उनमें निहित रचनात्मक मूल्यों पर खुलकर बहसें हुई, लेख लिखे गयें, और अव्यवस्थित आलोचना ग्रन्थों का, कम ही सही, पर ठोस और सार्थक ढंग से प्रकाशन निरन्तर जारी है।

हिन्दी आलोचना के इस दौर में पूर्ववर्ती रचनाकारों पर विचारों की अविच्छिन्न धारा को रेखांकित किया जा सकता है। बहुत से मुद्दे उठाये गये, अन्तर्विरोध और मूल्यांकन के वैचित्य की विविधता भी देखने को मिली, परम्परा को खारिज करने या परम्परा के भीतर जगह बनाने की अनेक चेष्टाएँ हुई, और कुल मिलाकर तलाश की टकराहट, परम्परा और आधुनिकता का जटिल किन्तु सार्थक संघर्ष, इस दौर में सामने आया।

बीज शब्द – परम्परा, और, रचनाकारों, समकालीनवोध, मूल्यांकन, हिन्दी आलोचना, आलोचकों, रचना मध्यकालीन पुनर्मूल्यांकन।

Introduction

हिन्दी के पूर्वमध्यकालीन काव्य की रचनात्मक दुनिया का साक्षात्कार प्रायः परम्परा वादी आलोचको ने किसी वैज्ञानिक जीवन दृष्टि या कि जनबोध के आधार पर प्रस्तुत नकर, काव्य रूड़ियों और काव्य की तथाकथित अपनी शर्तों पर उपस्थापित किया था, यह उनकी सीमा और विवशता दोनों थी। उनके लिए धार्मिक संवेदना, पौराणिकता, ईश्वरीय विधान की गहरी आस्थाएँ अनिवार्य विशेषता थी। उदाहरण के लिए तुलसीदास को भक्त कवि के रूप में देखा जाता रहा और यह बात एक तरह से भुला दी गई कि तुलसी में तत्कालीन समाज और सांस्कृतिक परिपार्श्व को, सीमित अर्थों में ही सही, परखने और अभिव्यक्ति देने का अद्भुत साहस और कौशल था, और यह कि उन्होनें निरंकुश सत्ता का ऐसा विरोध प्रस्तुत किया, कि उनके द्वारा प्रस्तुत की गई रामकथा सत्य से भी अधिक प्रमाणिक मानी जाने लगी। सबसे अधिक महत्वपूर्ण मुद्दा प्रासंगिकता का रहा और इसी से जुड़ा हुआ यह आलोचकीय विवेक भी ध्यान आकृष्ट करता है कि, इस दौर में पुनर्मूल्यांकनों की बाढ़ सी आई हुई प्रतीत होती है। यह पुनर्मूल्यांकन इस बात का संकेत है कि समकालीन साहित्य में स्चना के सरकारों के परिवर्तन के साथ अतीत पर पुनर्विचार एक आवश्यक आलोचनात्मक पहलू रहा है, क्योंकि सार्थक समकालीन बोध के लिए भी काल की अविच्छिन्न परम्परा के तहत अतीत के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित होता है।

आठवें दशक, की आलोचना में नये साहित्य के साक्षात्कार के लिए भी आलोचकों ने कबीर, सूर और तुलसी आदि रचनाकारों का पुनराविष्कार किया है। यह आकास्मिक

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 08, Special Issue 02, May 2025

नहीं है कि इन प्रमुख मध्यकालीन कवियों के अतिरिक्त लगभग सभी विशिष्ट पूर्ववर्ती रचनाकारों का पुनर्मूल्यांकन आठवें दशक के पहले से ही हिन्दी में प्राप्त होने लगा था। इसके पीछे रहस्य यह है कि हिन्दी की रचनात्मकता में मनोवैज्ञानिक और प्रगतिशील दोनो प्रकार की नवचेतनाओं के सन्निवेश से रचना–आस्वादन की पारंपरित रुढ़ि को था तो तोड़ने की आवश्यकता पड़ी या उस रूढ़िगत परिपाटी को परिर्वतित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। यही कारण है कि आधुनिक काल के आलोचकों ने समकालीन साहित्य की सृजनशीलता और प्रासंगिकता को जाँचने के साथ–साथ मध्यकाल के श्रेष्ठ रचनाकारों का मूल्यांकन करना आवश्यक समझा। वास्तव में समस्या यह हैं कि प्रासंगिकता का प्रतिमान क्या हो ? स्वयं प्रासंगिकता की खोज होने लगी तो साहित्य के स्थायी मूल्यों के निर्धारण की समस्या भी परिणाम के रूप में आज आलोचकों के सामने है। वैचारिक प्रतिवद्धत्ता अथवा शब्दार्थ की मानवीय सरणि, या यह कहा जाय कि मनुष्य की जिन्दगी में निहित मूल्य और भाववादी तथा वस्तुवादी दो भिन्न प्रकार के चिन्तनों में किस एक का चुनाव, रचना के मर्म को उद्‌घाटित करने के लिए किया जाय यह ज्वलंत समस्या आज आलोचकों के सामने हैं। इस सन्दर्भ में हिन्दी आलोचना में मार्क्सवादी और गैर मार्क्सवादी साहित्यकारों और आलोचकों की अलग–अलग टीमें न केवल समकालीन साहित्य का अपने ढंग से जायजा लेती है, अपितु पूर्ववर्ती रचनाकारों का मूल्यांकन भी करती हैं। इसलिए अपने–अपने झोले में कबीर, सूर, तुलसी एवं प्रेमचन्द आदि को रखने की प्रवृत्ति आज की हिन्दी आलोचना में प्रचलित से गयी हैं।

वास्तव में, साहित्य का सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप प्रसरण तो जुदा–जुदा होता हैं। पर उसकी अपनी कुछ निजी वास्तविकताएँ भी होती हैं। वाह्य वास्तविकताओं और साहित्य की अपनी निजता के बीच एक जटिल किन्तु सहृदय संवेद्य अन्तरावलम्बन होता है। जो कृति को उसकी स्वायत्तता तथा सामजिक परिदृश्य के बीच मूल्यांकित करने की अपरिहार्यता प्रदान करता है। इसीलिए निर्मल वर्मा यह कहते है कि ‘‘साहित्य में प्रासंगिकता की कसौटी वाह्य सामाजिक परिस्थितियों में नहीं, कहीं अन्यत्र ढूंढनी होगी।’’[1]

आठवें दशक में पूर्ववर्ती रचनाकारों पर जो आलोचनाएँ हुई कमोवेश उनका स्वरूप अपने–अपने आग्रहों के अनुरूप उन रचनाकारों को खींचने को कहाँ जा सकता है। बावजूद इस दशक में पुनर्मूल्याकन और चुने विचार के क्रम में कबीर, सूर और तुलसी पर बहुत कुछ नये ढंग से लिखा गया है। सन् साठ के बाद और आठवें दशक में मुख्य रूप से, कबीर का पुनर्मूल्यांकन करते हुए उनकी प्रासंगिकता पर विचार हुआ, और पहली बार महसूस किया गया कि जिन सामाजिक और आर्थिक कारणों से सांस्कृतिक संक्रमण के जिस टकराव से, कबीर की रचनात्मक प्रतिभा उद्दीप्त हुई थी, पूर्ववर्ती आलोचना में उसी की उपेक्षा की गयी तथा कबीर को मातृसन्त–गृहस्थ, श्रमजीवी आध्यात्मिक और हिन्दू मुस्लिम ऐक्य विधायक के रूप में ही स्वीकार किया गया। आचार्य शुक्ल जैसा सम्यक दृष्टि सम्पन्न आलोचक भी उनकी प्रतिभा को तो स्वीकार कर लेता है पर उन्हें कवि मानने में हिचकिचाता है।

इस दशक के प्रगतिशील आलोचकों ने कबीर के विद्रोही रुख को विशेष महत्व दिया और उसे आधुनिक काव्य संवेदना के निकट महसूस करके उसे प्रासंगिक स्वीकार किया। यद्यपि यह कार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी बहुत पहले कर चुके थे। नई कविता में जो असहमति का स्वर उभरा उसे कबीर से जोड़ा गया, और रेखांकित गया कि कबीर ने जिस विषमतापूर्ण समाज व्यवस्था का नंगा साक्षात्कार किया था, उसे एक ईमानदार रचनाकार के रूप में पूरी तरह चौलेंज किया। कबीर के काव्य में एक सच्चे विद्रोही की आत्मा के दर्शन करते हुए मार्क्स वादी आलोचको ने कबीर के काव्य को केन्द्रीय निष्ठा की कहीं न कहीं

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 08, Special Issue 02, May 2025

उपेक्षा की। इसी दशक कबीर को आधुनिक काव्य संवेदना के निकट महसूस करते हुए उन अन्तरों को भी स्पष्ट किया गया जो कबीर के काव्य की अर्थवक्ता को मूल्यवान बनाते है। ''कबीर का विद्रोह आस्तिक विद्रोह था, उन्होंने समाज व्यवस्था को उस विन्दु पर चुनौती दी थी, जहाँ उन्होंने ईश्वरेच्छा के विपरित अनुभव किया था।''[2]

डॉ. तिवारी के विश्लेषण से महसूस किया जा सकता है। ''कबीर के मत में सामाजिक धार्मिक विकृतियों को लेकर भले ही द्वन्द एवं तनाव रहा हो, वैयक्तिक मनोन्नयन के स्तर पर वे पूर्ण सामंजस्य प्राप्त कर चुके थे। इस विन्दु पर उनका सारा तनाव और द्वन्द शामिल हो गया है। यह सामंजस्य या समत्ववोध आज के कवि के लिए दुर्लभ है, उनकी रहस्यानुभूति भी आधुनिक काव्य संवेदना से मेल नहीं खाती।''[3] स्पष्ट है कि इस दशक में आलोचकों ने कृति एवं कृतिकार की परख, उसकी समग्रता में की।

सूरदास की चर्चा भी प्रेम को वैयक्तिक साधना के कवि के रूप में नहीं, बल्कि लोक चेतना से समृद्ध कवि के रूप में की गयी। इन्ही आलोचकों ने सूरदास के काव्य में संघर्ष और समकालीन जटिलता के तनाव का अभाव महसूस किया और जहाँ उसे महत्व देने की आवश्यकता पड़ी वहाँ उनकी चर्चा वल्लभाचार्य प्रतिपादित पुष्टिमार्गीय भक्ति सिद्धांत के प्रति समर्पित आस्था के कवि के रूप में नहीं, आध्यात्मिकता का धरातलीकरण का गोचर प्रत्ययीकरण करने वाले जनोन्मुख कवि के रूप में की। सूरदास की रचनात्मक दुनिया को, सामान्य जन–जीवन की आशा आकांशा से जोड़कर उनके भीतर के आध्यात्मिकता को एक लौकिक रस में परिवर्तित कर सारे आस्वादन व्यापार को जनतांतिक बनाने के लिए महत्व दिया। इस सच को भी स्वीकार किया गया कि दुनिया भर के साहित्य में शायद ही कोई ऐसा उदाहरण है जिसमें भगवत सत्ता का भावसत्ता के साथ इस तरह का सम्बन्ध स्थापित किया गया हो। सूर ने लोकसत्ता के सम्मुख भगवत सत्ता का धरातलीकरण किया, इसी कारण रमेशकुन्तल मेध और डी० प्रेमशंकर आदि आलोचकों ने उन्हें प्रासंगिक बताया। पर यह भी स्थापित किया गया कि कोई भी कवि महज इस लिए प्रामाणिक नहीं माना जा सकता कि उसके साहित्य में समकालीन समस्याओं को, जटिलताओं की और अंतर्द्वदों की अभिव्यक्ति ढूंढ निकाली जाय, बल्कि वह इस लिए प्रासंगिक होता है कि उसने मनुष्य की, मुक्त आंतरिक प्रकृति की गहराइयों का साक्षात् किया है।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार इसलिए भी सूर प्रासंगिक है– ''कविता में हम अपनी जिन्दगी को वापस पा जायें और उसके पढ़ने के बाद हम कुछ और मनुष्य हो उठे, संवेदनशील हो जायें इससे बड़ी प्रासंगिकता मेरे लिए किसी कविता या किसी रचना या किसी रचनाकार की नहीं हैं।''[4]

निष्कर्ष- तुलसी के व्यक्तित्व के सर्वाधिक आतंक के कारण, आठवें दशक के आलोचकों ने उनकी चर्चा भी सर्वाधिक की। ''जब हम लोक जीवन पर मानस के गहरे प्रभाव को देखते है तो पाते हैं कि वह सामाजिक क्रान्ति चाहने वाली नयी पीढ़ी के हाथ में एक शक्तिशाली और खतरनाक हथियार है। युवा चिंतन के सामाजिक पहलुओं के लिए कबीर और तुलसी हमेशा प्रासंगिक बने रहेगें।'' मध्य युगीन पुनर्मूल्याकंन के क्रम में ही इधर की आलोचना सभी आधुनिक बड़े क्रांतियों लेखकों की समीक्षा भी नयी दृष्टि से करती हैं।

भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रसाद, निराला, प्रेमचन्द आदि की आलोचनाएं इसी प्रकार की हैं। कहा जा सकता है कि आँखें दशक में पुराने साहित्यकारों की प्रासंगिकता की तलाश पर विशेष बल रहा है।

eISSN 2581-8996
ONLINE

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 08, Special Issue 02, May 2025

सन्दर्भ सूची –

1– निर्मल वर्मा – कला का जोखिमः पृष्ठ सं० 39
2– डॉ० रामचन्द्र तिवारी – कबीरमीमांसा, पृष्ठ सं 159
3– डॉ० राम चन्द्र तिवारी – कबीरमीमांसा, पृष्ठ सं० 159
4– डॉ० त्रिभुवन सिंह – सूर : सन्दर्भ और समीक्षाः सं० पृ० सं० 439